भारत में बैंकिंग प्रणाली का प्रारम्भ

प्रो0 (डॉ.) अजय कुमार सिंह*
अतिबला सिंह*

18वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों तथा 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत में यूरोपियन एजेंसी हाउस का उदय हुआ। वस्तुतः इन एजेन्सी हाउसेज के प्रारम्भ को ही हम भारत में आधुनिक बैंकिंग प्रणाली का उदय मान सकते हैं। ये एजेन्सी हाउस प्रारम्भ में कलकत्ता एवं बम्बई में ही शुरू किए गए थे और इन्हें ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कुछ सेवानिवृत कर्मचारियों तथा कुछ व्यवसायियों ने प्रारम्भ किया था। ये एजेन्सी हाउस मूलतः तो व्यावसायिक इकाईयां थीं किन्तु ये अपने व्यवसाय के साथ–साथ बैंकिंग कार्य भी करती थीं। एजेन्सी हाउस के तहत सबसे पहला बैंक 1770 में कलकत्ता में बैंक ऑफ हिन्दुस्तान के नाम से बैंक शुरू किया गया। इसके बाद कई एजेन्सी हाउसों ने अपने–अपने बैंक शुरू किए और उनमें से कई बंद होते गए और नए बनते गए। ये एजेन्सी हाउस बैंक के रूप में जमा स्वीकार करते थे, उधार देते थे और नोट भी जारी करते थे। 1829–32 के व्यावसायिक संकट के बाद इस प्रकार के एजेन्सी हाउस लगभग समाप्त ही हो गए।

18वीं शताब्दी के अन्त में बैंक ऑफ कलकत्ता के नाम से एक नए बैंक की स्थापना हुई। कुछ वर्षों बाद 1806 में इसने अपना नाम बदलकर बैंक ऑफ बंगाल कर लिया। इस बैंक की कुल निर्गमित पूंजी 50 लाख रूपये की थी जिसमें से 10 लाख रूपये की पूंजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने लगाई थी। कम्पनी का संरक्षण प्राप्त होने के कारण यह बैंक शीघ्र ही समूचे भारत में एक प्रमुख बैंक बन गया और इसे सरकारी कोष रखने का काम भी सौंपा गया। 1836 में प्रेसीडेन्सी बैंक अधिनियम पास किया गया। इस अधिनियम के तहत सरकारी वित्तीय सहयोग के आधार पर जिन कुछ बैंकों की स्थापना की गई उन्हें ही प्रेसीडेन्सी बैंक कहा गया। सबसे पहले तो 1840 में पहले से चले आ रहे बैंक ऑफ बंगाल को ही प्रेसीडेन्सी बैंक का दर्जा दे दिया गया। इसके बाद 1840 में ही बैंक ऑफ बाम्बे और 1843 में बैंक ऑफ मद्रास को प्रेसीडेन्सी बैंक के रूप में शुरू किया गया। सरकार के साथ सम्बन्धित होने के कारण इन प्रेसीडेन्सी बैंकों को कुछ विशेष अधिकार भी प्राप्त हुए जैसे सरकारी बैंकिंग व्यवसाय का एकाधिकार। किन्तु इसके साथ ही इनके लिए कुछ नियंत्रण भी लागू किए गए। कुछ नियंत्रणों के साथ इन बैंकों को अपने–अपने क्षेत्रों में नोट जारी करने का भी अधिकार दिया गया। इन पर जो कुछ नियंत्रण लगाए गए उनमें प्रमुख थे– विदेशी बिलों का व्यापार करने तथा विदेशों से उधार लेने पर रोक, छः महीने से अधिक के लिए उधार न देना, अचल सम्पत्ति की जमानत पर उधार देने की मनाही आदि। 1862–66 के दौरान सरकार ने इन प्रेसीडेन्सी बैंको से नोट जारी करने का अधिकार अपने हाथ में ले लिया।

इसके बावजूद भी प्रेसीडेन्सी बैंकों ने देश के कई महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्रों पर अपनी शाखाएं स्थापित कीं। किन्तु विभिन्न बैंकों एवं विभिन्न प्रकार के बैंकिंग कार्यों के बीच तालमेल बनाए रखने के लिए किसी एक प्रमुख बैंक की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। 1913–17 के बैंक संकट ने तो भारत में स्वतंत्र बैंकिंग प्रणाली की कमियों को और भी अधिक उजागर कर दिया। इस आवश्यकता में से ही इन तीनो प्रेसीडेन्सी बैंकों को मिलाकर एक बैंक बना देने के लिए 1920 में एक अधिनियम पास किया गया और इसके बाद 1921 में इन तीनों बैंकों को मिलाकर इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया के नाम से एक नया बैंक बना दिया गया। 1860 से पहले तक भारत में जो बैंक स्थापित किए गए थे वे लगभग सभी असीमित दायित्व वाले बैंक थे। 1860 में सीमित दायित्व के आधार पर संयुक्त पूंजी प्रारम्भ कर सकने की अनुमति देने वाला अधिनियम पास किया गया। अमेरिकन सिविल युद्ध के बाद 1862–65 के दौरान जो तेजी आई उस अवधि में यद्यपि कई संयुक्त पूंजी बैंको की स्थापना हुई किन्तु उनमें से अधिकांश थोड़ी अवधि के बाद ही बंद हो गए और इससे बैंकों पर जनता के विश्वास को ठेस लगी। इसके बाद भी 1873–93 के दौरान जो करेंसी को लेकर भ्रमपूर्ण अवस्था रही इसने व्यापार एवं व्यवसाय के क्षेत्र में अनिश्चितताएं उत्पन्न कर नए बैंकों की स्थापना के लिए प्रतिकूल वातावरण का निर्माण कर दिया। अतः 1865 से लेकर 1900 तक संयुक्त बैंकों की प्रगति बहुत ही धीमी रही। 19वीं शताब्दी के अन्त तक देश में 5 लाख रूपये से अधिक की पूंजी व रिजर्व वाले केवल 9 बैंक थे। इलाहाबाद बैंक की स्थापना 1865 में और एलायन्स बैंक ऑफ शिमला की स्थापना 1875 में हुई थी और ये दोनों ही बैंक यूरोपियन प्रबन्ध व स्वामित्व के बैंक थे।

विशुद्ध रूप से भारतीय प्रबन्ध में चलने वाला सबसे पहला सीमित दायित्व वाला संयुक्त पूंजी बैंक 1881 में अवध कामर्शियल बैंक के नाम से स्थापित हुआ। इसके बाद 1894 में पंजाब नेशनल बैंक और 1901 में पीपल्स बैंक की स्थापना की गई। इन सबने अच्छी प्रगति की। किन्तु पीपल्स बैंक 1913 में और

***निर्देशक प्रो0 एवं विभागध्यक्ष स्नातकोत्तर अर्थशास्त्र विभाग, शांति प्रसाद जैन महाविद्यालय, सासाराम**
***शोधार्थी एसीसटेन्ट प्रो0 स्नातकोत्तर अर्थशास्त्र विभाग, शांति प्रसाद जैन महाविद्यालय, सासाराम**

अवध कामर्शियल बैंक 1958 में फेल हो गए। 1906 से आरम्भ हुए स्वेदशी आन्दोलन के कारण भारत में भारतीय वाणिज्य बैंकों को काफी प्रोत्साहन मिला इसके परिणामस्वरूप 1906–13 के बीच 5 लाख रूपये से अधिक की पूंजी व रिजर्व वाले बैंकों की संख्या 9 से बढ़कर 18 हो गई। इनकी कुल पूंजी व रिजर्व 4 करोड़ रूपये और कुल जमा 22 करोड़ रूपये की थी। इस अवधि के दौरान स्थापित हुए छोटे बैंको की संख्या तो इससे काफी अधिक थी। इस अवधि के दौरान जिन कुछ प्रमुख बैंकों की स्थापना हुई और जिन्होंने बाद में अच्छी प्रगति की, वे थे, बैंक ऑफ इण्डिया लिमिटेड, द इण्डियन बैंक लि0, द सेण्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया लि0, द बैंक ऑफ बड़ौदा लि0 और बैंक ऑफ मैसूर लि0 आदि। 1913 तक बैंकिंग क्षेत्र में प्रगति होने के बाद 1913–17 के दौरान गम्भीर बैंकिंग संकट पैदा हो गया। इस अवधि के दौरान 87 बैंक फेल हुए। इनमें से ज्यादातर तो छोटे और कमजोर बैंक थे किन्तु लगभग आधा दर्जन बड़े बैंक भी थे।

इतनी बड़ी संख्या में बैंकों के फेल हो जाने से जनता का देश की बैंकिंग संस्था से विश्वास हिल गया और इसने भारत में बैंकिंग के विकास को गहरा आघात पहुंचाया। बैंकों के फेल होने के कई कारण थे, जैसे–बहुत थोड़ी सी निर्गमित पूंजी एवं प्रदत्त पूंजी से ही बैंक प्रारम्भ कर देना, बैंकिंग व्यवसाय के लिए जमाओं पर अधिक निर्भरता, जमाओं पर बहुत ऊँची ब्याज–दर देना, जमाओं को आकर्षित करने के लिए अनुचित प्रतियोगिता, गलत पूंजी निवेश, किसी व्यवसाय के बारे में समुचित जानकारी किए बिना ही उधार दे देना, प्रबन्ध की कुशलता का अभाव, योग्य कर्मचारियों की कमी, बैंकों के निदेशकों एवं प्रबन्धकों द्वारा अनुचित लाभ उठाने का प्रयास आदि। 1914–18 की प्रथम विश्व युद्ध की अवधि में जो तेजी की परिस्थितियां निर्मित हुई उससे एक बार फिर से नये बैंकों की स्थापना में गति आई। 1918–21 के दौरान बैंकों के फेल होने की गति भी कुछ कम हुई और इस अवधि के दौरान केवल 21 बैंक फेल हुए।

युद्ध की समाप्ति के बाद जो मंदी की अवस्था आई, उसके परिणामस्वरूप बैंक फेल होने की गति फिर से बढ़ गई। 1922–36 की अवधि के दौरान कुल 373 बैंक फेल हुए जिनकी चुकता पूंजी 6.8 करोड़ रूपये की थी। इसके बाद भी 1937–48 के बीच 620 बैंक और फेल हो गए। बैंकों के फेल होने के अधिकांश वे ही कारण थे जिनकी हम पीछे चर्चा कर चुके हैं। इस सारी परिस्थिति को देखते हुए बैंकों के नियंत्रण एवं नियमन की तीव्र आवश्यकता महसूस की जाती रही और इसी आवश्यकता के परिणामस्वरूप 1949 में बैंकिंग कम्पनी अधिनियम पास किया गया। इस अधिनियम के द्वारा भारतीय बैंकिंग प्रणाली के दोषों को दूर कर उसे एक सुदृढ़ आधार प्रदान करने का प्रयास किया गया।

भारतीय संयुक्त बैंक अपनी स्वयं की सीमाओं के कारण विदेशी व्यापार के लिए वित्त प्रदान करने में कोई भूमिका अदा नहीं कर पा रहे थे, अतः ऐसी स्थिति में विदेशी विनिमय बैंकों को इस क्षेत्र में लगभग एकाधिकार सा ही प्राप्त था। इन विदेशी बैंकों का मुख्यालय विदेश में ज्यादातर लंदन में होता था और उनकी शाखायें भारत के प्रमुख व्यापारिक केन्द्रों पर होती थी। 1914 से पहले प्रमुख भारतीय संयुक्त पूंजी बैंक जिसकी लंदन में भी शाखा थी वह था इण्डियन स्पेसी बैंक किन्तु इसका व्यवसाय मुख्यतः चांदी एवं मोतियों का होता था। द एलायन्स बैंक ऑफ शिमला तथा टाटा इण्डिस्ट्रयल बैंक ने कुछ सीमा तक विदेशी विनिमय व्यापार किया था। वस्तुतः पहला भारतीय विदेशी विनिमय बैंक 1936 में ही सेण्ट्रल एक्सचेंज बैंक ऑफ इण्डिया के नाम से लंदन में खोला गया था, किन्तु यह भी आगे चलकर बारक्लेज बैंक, लंदन, के साथ 1938 में मिल गया। ऐतिहासिक दृष्टि से भारत में दो प्रकार के विनिमय बैंक काम करते रहे हैं। पहले वर्ग में हम ब्रिटिश बैंकों को शामिल कर सकते हैं जैसे चार्टर्ड बैंक ऑफ इण्डिया; आस्ट्रेलिया एण्ड चायना (1835), द नेशनल बैंक ऑफ इण्डिया (1863), द हांगकांग एण्ड शंघाई बैंकिंग कारपोरेशन (1864), द मरकेण्टाइल बैंक ऑफ इण्डिया (1893) और ईस्टर्न बैंक (1910)। दूसरे वर्ग में वे बैंक थे जो भारत के साथ अपने–अपने देशों के व्यापार में विशेषज्ञ थे।

विदेशी विनिमय बैंकों को कुछ ऐसी सुविधाएं प्राप्त थीं जो भारत के विदेशी व्यापार को वित्त प्रदान करने की दृष्टि से भारतीय संयुक्त पूंजी बैंको को प्राप्त नहीं थी जैसे; पूंजी प्रबन्ध एवं कार्मिक अनुभव की दृष्टि से बेहतर साधनों का उपलब्ध होना तथा अपने मुख्यालयों के माध्यम से लंदन के मुद्रा बाजार तक आसानी से पहुंच आदि। भारत के विदेशी व्यापार को वित्त देना उन दिनों तक आकर्षक व्यवसाय माना जाता था। किन्तु वास्तव में यह उतना लाभप्रद नहीं था जिनता समझा जाता था। विनिमय बैंको की आपसी प्रतियोगिता के कारण भी इनके मार्जिन कम होते रहते थे और उसका लाभ अन्ततोगत्वा भारतीय आयातकों अथवा निर्यातकों को ही मिलता था। किन्तु इस सबके बावजूद भी इन विनिमय बैंकों पर सदैव यह आरोप लगाया जाता रहा कि ये अपने एकाधिकार का नाजायज फायदा उठाकर हमेशा भारतीय व्यवसाय को नुकसान ही पहुंचाते हैं। इस दृष्टि के कारण ही केन्द्रीय बैंकिंग जांच समिति (1929–31) को इन विनिमय बैंकों के बारे में कई शिकायतें की गई थीं। इनमें से कुछ शिकायतें तो जायज थीं किन्तु कुछ शिकायतें बैंकों के प्रति दुराग्रहपूर्ण दृष्टिकोण के कारण ही की गई थी।

इनमें से कुछ शिकायतें ऐसी थीं जो विनिमय बैंक की सीमा से बाहर थीं, वे तो तत्कालीन परिस्थिति की उपज थीं। किन्तु इतने पर भी यह तो सच ही था

कि विदेशी विनिमय बैंकों के सामने अपने–अपने देश का हित ही प्रमुख रहता था और वे भारतीय हित के लिए काम नहीं कर पाते थे। इसीलिए देश में विशुद्ध रूप से भारतीय विदेशी विनिमय बैंक की मांग जोर पकड़ने लगी थी और 1935 में रिजर्व बैंक बन जाने के बाद इसे विदेशी विनिमय का काम भी सौंपा गया।

1836 में इंग्लैण्ड में व्यापारियों के एक संगठन ने भी ब्रिटिश भारत के लिए एक ग्रेट बैंकिंग संस्था के निर्माण का सुझाव रखा था। वायसराय कौंसिल के भारत के प्रथम वित्तीय सदस्य जेम्स विल्सन ने भी 3 मार्च 1860 को भारतीय विधान परिषद में पेपर करेंसी के बारे में बिल पेश करते हुए एक राष्ट्रीय बैंकिंग जैसी संस्था की स्थापना का सुझाव दिया था। 1867 में जी. डिकन्सन ने, जो कि बैंक ऑफ बंगाल के तत्कालीन सेक्रेटरी एवं ट्रेजरर थे, तीनो प्रेसीडेन्सी बैंकों को मिलाकर करेंसी एवं साख पर नियंत्रण रखने की दृष्टि से समूचे देश के लिए एक बैंक बनाने का सुझाव रखा था। किन्तु इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया गया।

1893 में फाउलर करेंसी कमेटी के सदस्य ई0हम्ब्रो ने भारत में बैंकिंग सुविधाओं के विकास करने तथा करेंसी के नियंत्रण को ठीक से लागू करने के लिए एक मजबूत केन्द्रीय बैंक बनाने का सुझाव दिया था। इन्होंने केन्द्रीय बैंक की स्थापना के लिए जो तर्क दिए थे उन्हें लॉर्ड कर्जन ने अस्वीकार कर दिया। आगे चलकर चेम्बरलिन आयोग के दो सदस्यों सर अरनेस्ट केबल और जे.एम. केन्ज ने 1913 में भारत में केन्द्रीय बैंक की स्थापना की एक विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत की। किन्तु 1914 में विश्वयुद्ध छिड़ जाने के कारण इस प्रस्ताव पर अमल नहीं किया जा सका। बाद में जब अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ परिषद ने ऐसे देशों में जहां केन्द्रीय बैंक नहीं थे, वहां इनकी स्थापना पर जोर दिया तो भारत में तीन प्रेसीडेन्सी बैंक को मिलाकर 1921 में इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना कर दी गई। इसकी स्थापना के साथ ही यह माना गया कि यह ही प्रस्तावित केन्द्रीय बैंक के कामों को कर देगा, अतः किसी अलग संस्था को बनाए जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। वस्तुतः तो यह एक वाणिज्यिक बैंक ही था जिसे कुछ केन्द्रीय बैंक के काम भी सौंप दिए गए थे। किन्तु आगे के अनुभवों ने यह सिद्ध कर दिया कि इम्पीरियल बैंक देश में केन्द्रीय बैंक की कमी को पूरा नहीं कर पाया। 1926 में हिल्टन यंग कमीशन ने भी इम्पीरियल बैंक के केन्द्रीय बैंक के रूप में कार्य करने के विचार का समर्थन नहीं किया और रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के नाम से देश में एक अलग से केन्द्रीय बैंक की स्थापना का सुझाव रखा। इस कमीशन ने रिजर्व बैंक को शेयर होल्डर्स की एक निजी संस्था के रूप में स्थापित करने का सुझाव दिया था ताकि इसे राजनीतिक दबावों से मुक्त रखा जा सके और यह देश की वित्तीय स्थिरता की दिशा में ठीक से काम कर सके। इस सुझाव के अनुसार भारत सरकार ने

जनवरी 1927 में निजी शेयर होल्डर्स के बैंक के रूप में रिजर्व बैंक की स्थापना के बारे में एक बिल पेश किया। किन्तु विधान–परिषद में यह पास नहीं हो सका। सरकार इसे एक सरकारी बैंक बनाना चाहती थी। कई वर्षों तक यह विवाद चलता रहा कि रिजर्व बैंक की स्थापना प्राइवेट शेयर होल्डर्स के बैंक के रूप में हो अथवा एक सरकारी बैंक के रूप में। आखिरकार सितम्बर 1933 में फिर से सरकार ने रिजर्व बैंक की स्थापना के लिए बिल पेश किया और यह बिल मार्च 1934 में पास कर दिया गया। इसके अनुसार 1 अप्रैल 1935 से रिजर्व बैंक अस्तित्व में आ गया और इसने काम करना शुरू कर दिया।

प्रारम्भ में रिजर्व बैंक को निजी शेयर होल्डर्स की एक संस्था के रूप में ही स्थापित किया गया था। इस बैंक की कुल चुकता पूंजी 5 करोड़ रूपये की रखी गई और उसे 100 रूपये के शेयर्स में बांटा गया था। रिजर्व बैंक अधिनियम (1934) की प्रस्तावना में रिजर्व बैंक की स्थापना के उद्देश्य को इन शब्दों में समझाया गया है– 'बैंक नोटों के निर्गमन को नियमित करना तथा रक्षित निधियों को रखना ताकि भारत में मौद्रिक स्थिरता बनाई रखी जा सके तथा देश की साख व करेंसी प्रणाली को देश के लाभ के लिए क्रियाशील किया जा सके।' भारत की विशेष परिस्थिति को देखते हुए भारत में रिजर्व बैंक केवल परम्परागत केन्दीय बैंकिंग कार्य ही नहीं करता बल्कि भारत के एक अल्पविकसित देश होने के कारण इसकी आर्थिक प्रगति की दिशा में कुछ गैर–परम्परागत कार्य भी करता है। आगे चलकर यह महसूस किया गया कि अपने काम को प्रभावी ढंग से करने की दृष्टि से रिजर्व बैंक को सरकार के स्वामित्व में ही होना चाहिए। अतः रिजर्व बैंक अधिनियम (1948) के अन्तर्गत 1 जनवरी, 1949 को इसका राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। सरकार ने 100 रूपये के प्रत्येक शेयर के बदले 118.10 रूपये देकर सब शेयर खरीद लिए। इस प्रकार अब यह अंशधारियों का बैंक न रहकर सरकारी स्वामित्व वाला बैंक हो गया। इस प्रकार के बैंकों के अलावा अंग्रेजी शासनकाल में बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में सहकारी साख प्रणाली की भी शुरूआत हो चुकी थी। यद्यपि स्वतन्त्रता से पहले सहकारी साख समितियों एवं सहकारी बैंकों की संख्या सीमित ही थी, तो भी इस दिशा में प्रयास प्रारम्भ हो चुके थे।

संदर्भ ग्रंथ–सूची :–

1. धर्मा कुमार, द कैम्ब्रिज इकॉनोमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया
2. सिंह, वी0वी0 इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया।
3. भट्टाचार्य, धीरेश, ए कंसाइज हिस्ट्री ऑफ द इण्डियन इकोनॉमी
4. भट्, वी.बी., आस्पेक्ट्स ऑफ इकानोमिक चेन्ज एण्ड पॉलिसी इन इण्डिया
5. विपिन चन्द्र, भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव और विकास।
6. गाडगिल, डी.आर., द इण्डस्ट्रियल रिवोल्यूशन ऑफ इण्डिया।

****